

चलो प्रकृति की ओर

■ एस. रामास्वामी

एक बार मैं बगीचे में टहल रहा था। उस समय हवा कुछ तेज गति से चल रही थी। मैंने देखा कि हवा के झोंके के कारण छोटे-छोटे पौधे बहुत तेजी से हिल रहे थे। तभी मुझे माली दिखाई दिया और मैंने उससे कहा, “भाई, इन छोटे-छोटे पौधों की टहनियों को एक रस्सी से बाँध दो ताकि ये टूट न जाएं।” माली ने पौधों को देखते हुए कहा, “साहब, इन्हें कुछ नहीं होगा। इन्हें बाँधने से अच्छा नहीं होगा। बाँधने से इनकी जड़ें कमज़ोर पड़ जाएंगी। ये बड़े होकर जल्दी गिर जायेंगे।”

उस माली का उत्तर सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। मैं सोचने लगा कि इस गंवार से दिखने वाले माली ने जीवन का एक अटूट सत्य इतनी सहजता से कह दिया जिसे मैं और मुझ जैसे अनेक व्यक्ति मानते हुए भी अपनाने को तैयार नहीं हैं। वह अटूट सत्य हैं- कठिनाइयों को झेलना, प्रकृति के सारे रंगों-सर्दी, गर्मी और ताप को झेलते हुए एकदम मज़्बूत बन जाना।

क्या हम जीवन के इन मूल मंत्रों से अपरिचित हैं? क्या हम जानते हुए भी इन मूल बातों से आँख फेरने में ही अपनी अकलमंदी मानते हैं? वास्तव में, अनुकूलता-प्रतिकूलता, सुख-दुख, लाभ-हानि, धूप-छाँव, जीत-हार, दिन-रात, प्रकाश-अंधेरा आदि जीवन के वे पहलू हैं जिनका असर प्रत्येक प्राणी जीवन पर पड़ता है। अंधेरे के बाद ही प्रकाश का महत्व समझ में आता है। भौतिकता के इस युग में मेरे जैसे लोग, प्रतिकूलता सहन करना ही नहीं चाहते।

हाल ही में मैंने एक अध्ययन में पाया कि जो

बच्चे मिट्टी में लोट-पोट कर बड़े होते हैं उनमें रोग प्रतिरोधक शक्ति ज्यादा होती है बजाए उन बच्चों के जो हथेलियों में पलते हैं। मनुष्य एक प्राकृतिक प्राणी है। अतः उसका प्रकृति से जुड़ना बहुत जरूरी है। प्रकृति हमारी माँ है और अपने बच्चों के फायदे के लिए जो जरूरी है वह देती है। गर्मी, सर्दी, बरसात, बसंत आदि सब मौसम हमारे शरीर के लिए जरूरी हैं। हमारी शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार ही हर मौसम में अलग-अलग तरह की फल-फूल, सब्जियाँ आदि हमारी धरती माँ प्रदान करती हैं।

लेकिन आज के भौतिक जगत में मनुष्य ने अपनी सुविधानुसार ऐसे-ऐसे साधन विकसित कर दिए हैं कि वो पूर्णतया मशीनों पर निर्भर हो गया है। उसमें प्रकृति को सहन करने की शक्ति नष्ट होती जा रही है। आज का मनुष्य इस हद तक भोग विलासी हो गया है कि वह किसी भी तरह की प्रतिकूलता सहन ही नहीं करना चाहता। इसका परिणाम यह निकलता है कि उसे प्रकृति के खिलाफ जाने का फल भुगतना पड़ता है। आज यह जरूरी हो गया है कि मनुष्य प्रकृति से जुड़े, संस्कृति से जुड़े, सुबह-सुबह खुले में घूमकर प्रकृति की छटा को निहारे। इस तरह वह प्रकृति के प्रसाद को ग्रहण करते हुए अपनी शक्ति को बढ़ा सकता है।

आइये चलें, प्रकृति की गोद में। जिस तरह एक बालक अपने आप को अपनी माता की गोद में सुरक्षित पाता है, उसी तरह हम सब भी प्रकृति की गोद में जाकर अपने आप को हर आने वाली विपदा से सुरक्षित करें।

“हाय बेरोजगारी”

■ जे.जे.श्रीवास्तव “ज्योति”

दुनिया में काम की कोई कमी नहीं है। कमी है तो बस यह सोचने की कि कुछ न कुछ काम किया जाए। कुछ लोगों का काम बस यही सोचने का होता है कि काम आखिर किया कौन सा जाए। वह काम के बारे में दिन-भर सोचते रहते हैं और रात को उन्हें काम मिल ही जाता है “तारे गिनने का।” वह काम के बारे में सोचते-सोचते रात-भर तारे गिनते रहते हैं और तब तक गिनते रहते हैं जब तक सारे तारे अपने-अपने घरों को वापस नहीं चले जाते। सुबह आसमान में ज्योंही सूर्य ने किरणों रूपी झाड़ू से तारों का कूड़ा बटोरा, वह फिर तल्लीन हो जाते हैं, काम ढूँढ़ने में। दूरदर्शन रोजगार समाचार से लेकर, समाचार-पत्र के रोजगार समाचार तक को चाय छानने की बारीक छलनी से छान मारते हैं ये लोग। ऐसे लोगों को रोजगार फोलियो हो जाता है। किसी ने कह भर दिया कि भय्ये मैं जे.के.टायर कंपनी में लग गया हूँ। बस पहुँच गए उसके स्कूटर के टायर के पीछे दौड़ते-दौड़ते उसके घर। दरवाजा खटखटाया और दरवाजा खुलते ही उसके हाथ की कोहनी के नीचे से निकलकर ड्राइंगरूम के कोने में पड़े सोफे के कोने में समाते हुए बोले—“गुरु अपना भी कुछ करो न”

“क्या करूँ। आखिर तुम्हारा करना क्या है”—वह ऐसे पूछता है जैसे पूछ रहा हो कि तेरा अचार डालना है या मुरब्बा।

“मेरा मतलब, अपना भी कुछ जे.के.टायर कंपनी में जुगाड़ चला दो ना”

“कैसा जुगाड़ चला दूँ”

“जैसे जुगाड़ से सरकार चल रही है”

“अरे भय्ये। सरकार चलाना बहुत सरल होता है इन प्राईवेट कंपनियों में काम करने की तुलना में। “जिन” को काम कराने के लिये आदेश देना पड़ता है लेकिन वहाँ बिना आदेश मिले जिन से भी ज्यादा काम करना पड़ता है और जरा सी लापरवाही, मतलब दूसरे दिन से बिना रुपये पैसे की पेंशन शुरू। कुछ प्राईवेट कंपनियों में तो कुछ लोग काम की अधिकता के कारण घर ऐसे लौटे जाते हैं जैसे अपनी क्रिकेट टीम के कई खिलाड़ी पिच पर जाते समय बल्ला ऐसे घुमाते हुए जाते हैं जैसे एक ही घंटे में डेढ़ दो हजार रन बना लेंगे लेकिन डेढ़ दो बॉलों पर ही अपने तीनों विकेट और दोनों गिल्लियों को हवा में उड़ावाकर विकटों को ऐसे देखते हैं, मानों दर्शकों से कह रहे हों कि वाकई मैं आज डेढ़-दो हजार रन बनाकर ही रहता अगर यह विकेट्स यहाँ पर नहीं होते।

स्पष्ट लिख रहा हूँ यह कहानी मेरी ही है। देश के करोड़ों बेरोजगारों की सूची में मेरा भी नाम था अतः मैं जानता हूँ कि दिल्ली की सरकारी बसें और मुंबई की लोकल ट्रेन से कहाँ अधिक तकलीफ देते हैं “बेरोजगारी के धक्के॥” ट्रेन और बसों के धक्कों से व्यक्ति को तकलीफ होती है लेकिन बेरोजगारी के धक्कों से पूरे परिवार को तकलीफ होती है। इस दौर से प्रत्येक व्यक्ति को गुजरना पड़ता है।

जब हम भी बी. कॉम. द्वितीय वर्ष की खिड़की से बी.कॉम फाइनल के आँगन में झांकने का प्रयास कर रहे थे तब हमारे एक असली दुश्मन से सगे रिश्तेदार ने हमें कमअक्ल का बंदा समझकर गंभीर मजाक कर दिया था कि ग्रेजुएट होते ही टी.सी.एस., विप्रो जैसी कई

■ साईं कृपा, बी-13, नितिन नगर, थाटीपुर, ग्वालियर, म.प्र.-474011

कंपनी के एम.डी. स्वयं हमारे घर आकर हमसे रिकैस्ट करेंगे कि हम उनकी कंपनी में नौकरी ज्वार्डन कर लें। हमें इस मजाक का पता तब लगा जब ग्रेजुएट होने के बाद कई सावन, कई पतझड़ और कई बसंत हमें टाटा करके आगे बढ़ गए किन्तु विप्रो क्या बिप्रो गोली बिस्कुट की लोकल कंपनी का कोई चपरासी तक हमारे घर के सामने से गुजरा तक नहीं।

एक दिन उसी दुश्मन रिश्तेदार ने तेजी से स्कूटर पर जाते पूछा - “क्यों, अभी तक कुछ काम मिला कि नहीं?”

हमें उसे देखकर बेहद गुस्सा आया। वो तो हम अपने पिताजी की पैंतीस वर्षीय पुरानी साइकिल पर सवार थे अगर किसी ट्रक पर सवार होते तो भगवान कसम उस ट्रक से ऐसा कुचलते कि नगर निगम वाले उसे कढ़ीया में जले दूध की तरह खुरच-खुरच कर निकालते और भैंसा गाड़ी में भरकर ले जाते। फिर भी हमने उसके पीछे, अपनी औकात से कहीं अधिक, हिसाब से उसे ऐसी भद्दी-भद्दी गालियां, दस गाली प्रति सैकिण्ड के हिसाब से दे डाली। मन तो कर रहा है कि मैं वे सभी गालियां यहाँ लिख दूँ किन्तु क्या करूँ, है तो वो मेरा रिश्तेदार ही।

खैर। हम गुस्से में घर आकर फिर न्यूज पेपर को चाटने लगे जो हमारे लिये सिर्फ “रोजगार समाचार पत्र” था। उस दिन समाचार-पत्र को हम पर कुछ तरस आ गया। उसके “आवश्यकता है” कॉलम के एक विज्ञापन में वही खूबियाँ मांगी गई थीं जो ले-देकर हममें विद्यमान थीं। विज्ञापन एक शराब की फैक्ट्री में ‘स्टोर-कीपर’ की नौकरी का था। वैसे मैं शराब से बेहद घृणा करता था किन्तु उससे कहीं अधिक प्यार करता था, नौकरी से। अतः मैं वक्त की नज़ाकत को देखते हुए पहुँच गया उस फैक्ट्री में इन्टरव्यू देने, जिसे करोड़ों घरों को फूँकने का गौरव प्राप्त था।

इंटरव्यू में अभी एक घंटा शेष था, अतः हमने सोचा क्यों न तब तक फैक्ट्री घूमकर उसके इतिहास, भूगोल को पढ़ लिया जाए। हमने बहुत देर तक शराब बनने से लेकर शराब भरने तक की ‘रामलीला’ देखी और पुनः आकर अपना इंतजार कर रहे स्टूल पर बैठ गए। न जाने हम कैसे स्टूल के पीछे गिर गए। कुछ साथियों ने हमें उठाया। हमारे सिर पर एक सुंदर सा गूमड़ पड़ चुका था। इस बीच हम बिना किसी के बताए जान चुके थे कि शराब के बीच एक घंटा रहने से, वह हम पर हावी हो चुकी है। हमें शराब का ठीक-ठाक नशा हो चुका है।

जब हम इंटरव्यू के लिए अधिकारियों के सामने पहुँचे तो एक अधिकारी ने उठकर हमें दोनों हाथों से पकड़कर कुर्सी पर बिठाया। दूसरे ने तुरंत प्रश्न दागा - “मिस्टर श्रीवास्तव। इस तरह शराब के नशे में धुत रहोगे तो काम कैसे करोगे?”

हमने कोई उत्तर नहीं दिया, क्योंकि उत्तर तो हम तब देते जब हमें प्रश्न समझ में आता। तीसरे अधिकारी ने पूछा - “नाम?”

हमने कहा “बी.काम”

उसने पूछा “कहाँ रहते हो?”

हमने कहा “जे.जे.श्रीवास्तव”

उसने पूछा “किस कॉलेज से”

हमने कहा “चिक संतर मुरार” गली नं. एक”

उसने कहा “माफ कीजिए। हम यह नौकरी आपको नहीं दे सकते।”

हमने कहा - “थैंक्स”

भगवान जाने हमारा इंटरव्यू कितने दिन तक चला। हमें कुछ-कुछ याद है कि दो चपरासी जैसे लोग

हमें एक ऑटो में बोरे की तरह फेंकते हुए बोले – “ओ भया। जरा ज्यादा टुन हैं। घर के अंदर जाकर, घरवालों के हाथों में देकर आना।”

वह ऑटोवाला हमसे रास्ते भर घर का पता पूछता रहा और हम उसे अपने घर का पता ऐसे बताते रहे जैसे अपने घर जीवन में पहली बार जा रहे हों।

जब काफी देर हो गई तो ऑटो वाले का हम पर से विश्वास उठ गया। अब वह रास्ता चलते लोगों से हमारी मुँह दिखाई करवाकर पूछने लगा – “अरे भाई साहब। क्या आप जानते हैं कि यह दरुआ (शराबी) कहाँ पर रहता है।”

जब किसी ने हमारा पता नहीं बताया और हमें उस ऑटो वाले पर तरस आ गया तो हमने बड़े एहसान के साथ कपर्यू में खुले आशिक बाजार की तरह अपनी एक आँख कुछ खोली (ताकि हम उस ऑटो वाले की कुछ मदद कर सकें) तो सामने ही अपना घर खड़े हुए पाया। सामने ही पिताजी और भाईयों को देखकर हम खुश हो गये कि चलो घंटे भर बाद ही सही, घर मिल तो गया। हमने पूरी ताकत लगाकर ऑटो वाले से कहा – “यही है हमारा घर”

“चुप कर दर्खए” – इतना कहकर ऑटो वाला आगे बढ़ गया। लगभग डेढ़ घंटे बाद हमारे उसी दुश्मन रिश्तेदार ने हमें पहचान लिया और ऑटोवाले से बोला – “हाँ मैं इसे जानता हूँ। बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। यह देश के करोड़ों बेरोजगारों में से एक है। करोड़ों

बेरोजगार इसी तरह भटक रहे हैं, बिना शराब के नशे में डूबे हुए, जिन्हें न अपना घर दिख रहा है न मंजिल। वह तो बस दौड़े चले जा रहे हैं लम्बी पथरीली राहों पर कि कहीं तो मिलेगी उन्हें उनकी मंजिल। उनमें से कुछ खुशनसीबों को उनकी मंजिल मिल भी जाती है किन्तु दौड़ने वालों की संख्या बढ़ती ही जाती है ज्यामितीय अनुपात में। कभी-कभी दुःख होता है कि क्यों बढ़ रही है देश में शिक्षितों की संख्या, जब उनके लिये रोजगार नहीं है देश में। यह उत्तर उस प्रश्न का भी है कि शिक्षित अपराधियों, शिक्षित आतंकवादियों की संख्या क्यों बढ़ रही है। ये किसकी जिम्मेदारी है किसका दायित्व है उन्हें रोजगार देने का। कब। आखिर कब खत्म होगी शिक्षित बेरोजगारों की यह दौड़।”

मैंने आँखें खोली। उस रिश्तेदार को देखा और पलकें झपकाकर उसे धन्यवाद दिया, मेरे घाव पर मरहम लगाने के लिये। वह भी समझ गया। उसने मुझे सहारा देकर बड़े प्यार से ऑटो से उतारा और घर के अंदर छोड़कर मेरी तरफ देखते हुए बोला – “जे.जे.। कह दो तूफानों से अपनी ओकात में रहें, मैं पंखों से नहीं हौसलों से उड़ा करता हूँ।”

उनके चन्द शब्दों ने मुझे हौसला दिया। कुछ दिन बाद मैंने कर्मचारी चयन आयोग की परीक्षा दी, उत्तीर्ण हुआ और मेरी नियुक्ति महालेखाकार कार्यालय, ग्वालियर में ही हो गई और आज जैसा भी हूँ आपके सामने हूँ।

—————*

शिक्षा जब पराई भाषा में दी जाती है तब केवल शब्दों को याद रखने का बोझ ही विद्यार्थी के दिमाग पर नहीं पड़ता, बल्कि विषय को समझने में भी उसे बड़ी कठिनाई होती है। यह तो स्पष्ट है कि जहाँ रटने की शक्ति बढ़ती है वहाँ समझने की शक्ति मंद पड़ जाती है। हमारे मुल्क की संस्कृति एक ही है – यह हिंदी संस्कृति है।

-सरदार वल्लभ भाई पटेल